सन्मति साहित्य रत्नमाला का ५१ वाँ रत्न

तत्त्वार्थ-सूत्र

[संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद]

सम्पादक

पंडित मुनि, श्री अखिलेशचन्द्र जी महाराज

प्रकाशक

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

प्रकाशक
सन्मति ज्ञान पीठ,
लोहामंडी, आगरा ।

मूल्य ॥)

मुद्रक
प्रेम प्रिंटिंग, प्रेस,
राजामंडी, आगरा

प्रकाशकीय

आचार्य उमास्वाति विरचित "तत्त्वार्थ-सूत्र" एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह जितना लघु है, उतना ही विराट भी। जैन आचार्यों ने जितना पल्लवित इस ग्रन्थ को किया है, उतना अन्य किसी को नहीं किया। क्योंकि इसमें जैनधर्म और जैन दर्शन के सभी विषयों का परिचय आचार्य ने बड़ी ही सुगम शैली में दिया है।

संस्कृत भाषा में तत्त्वार्थ सूत्र पर विशाल और विस्तृत टीकाएँ हैं। हिन्दी भाषा में भी इस पर विस्तृत विवेचन लिखे गए हैं। परन्तु मूलपाठ करने वालों के लिए और कण्ठस्थ करने वालों के लिए कोई सुन्दर संस्करण इसका उपलब्ध नहीं हो रहा था। इस अभाव की पूर्ति करने का हमारा संकल्प था।

मुझे प्रसन्नता है, कि पण्डित रत्न मुनि श्री अखिलेशचन्द्रजी महाराज ने परिश्रम करके शुद्ध मूल पाठ और शुद्ध अर्थ तैयार करके हमें दिया। मुनि श्री के परिश्रम के प्रति हम आभारी हैं। साथ ही हम

श्रीयुत शान्तिलाल देसड़ला के भी आभारी हैं, जिन्होंने टाइप से इसकी पाण्डु लिपि तैयार करने का श्रम किया है।

आशा है, स्वाध्याय प्रेमी पाठक इस प्रस्तुत पुस्तक से लाभ उठाएँगे। सन्मति ज्ञान पीठ का यह प्रयत्न ज्ञानवृद्धि में सहयोगी बन सकेगा। इसी भावना से यह प्रकाशन किया जा रहा है।

विजयसिंह दूगड़
मंत्री
सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

४—५—५७

तत्त्वार्थ-सूत्र

प्रथमोऽध्यायः ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षा-
स्तत्त्वम् ॥४॥

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥

प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थिति
विधानतः ॥७॥

पहला अध्याय

१—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—ये तीनों मिल कर मोक्ष के मार्ग—साधन हैं।

२—तत्त्व-रूप पदार्थों की श्रद्धा अर्थात् दृढ़ प्रतीति, सम्यग्-दर्शन है।

३—वह सम्यग्दर्शन निसर्ग अर्थात् स्वभाव से और अधिगम अर्थात्—सद्गुरू के उपदेशादि बाह्य निमित्त से उत्पन्न होता है।

४—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

५—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपों द्वारा सम्यग्दर्शनादिकों का तथा जीवादि तत्त्वों का न्यास (लोक व्यवहार) होता है।

६—प्रमाण और नयों द्वारा जीवादि तत्त्वों का ज्ञान होता है। (प्रमाण वस्तु के सर्वांश को ग्रहण करता है, तथा नय वस्तु के एकांश को ग्रहण करता है)।

७— निर्देश—वस्तुस्वरूप २ स्वामित्व—मालिकपना ३ साधन—कारण ४ अधिकरण—आधार ५ स्थिति--काल मर्यादा ६ विधान—प्रकार, इनसे सम्यगद र्शनादिएवं जीवादि तत्त्वों का ज्ञान होता है।

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्प-
बहुत्वैश्च ॥८॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि ज्ञानम्॥९॥

तत् प्रमाणे ॥१०॥

आद्ये परोक्षम् ॥११॥

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्य-
नर्थान्तरम् ॥१३॥

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥

अवग्रहेहावायधारणाः ॥१५॥

८—तथा (१) सत् सत्ता (२) संख्या (३) क्षेत्र (४) स्पर्शन (५) काल (६) अन्तर विरहकाल (७) भाव अवस्था विशेष (८) अल्प बहुत्व, इन अनुयोगों द्वारा भी सम्यग्दर्शनादि विषयों का तथा जीवादि तत्वों का बोध होता है।

९—मति, श्रुत, अवधि, मन : पर्याय और केवल—ये पाँच ज्ञान है।

१०—वह पाँच प्रकार का ज्ञान दो प्रमाण रूप है।

११—पहिले के दो ज्ञान मति और श्रुत इन्द्रियादि निमित्त की अपेक्षा रखने से परोक्ष प्रमाण हैं।

१२—शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

१३—मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध—ये शब्द पर्यायभूत—एकार्थवाचक हैं।

१४—वह मतिज्ञान पाँच इन्द्रिय और छट्ठे मन के निमित्त से होता है।

१५—अवग्रह—विशेष कल्पनारहित सूक्ष्म अव्यक्त ज्ञान। ईहा—विचारणा, अवाय—निश्चय, धारणा—बहुत समय तक नहीं भूलना, इस प्रकार मतिज्ञान चार प्रकार का होता है।

बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितासंदिग्धध्रुवाणां-
सेतराणाम् ॥१६ ।

अर्थस्य ॥१७॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥

द्विविधोऽवधिः ॥२१॥

भवप्रत्ययो नारकदेवानाम् ॥२२॥

यथोक्तनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२३।

१६—बहु-अनेक, बहुविध-अनेक तरह, क्षिप्र-जल्दी, अनिःसृत-नहीं निकलना, अनुक्त-बिना कहे जानना, ध्रुव-निश्चित, तथा इनके विपरीत एक, एकविध, अक्षिप्र, निःश्रित, उक्त और अध्रुव इस तरह अवग्रहादि रूप मतिज्ञान होता है।

१७—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ये चारों मतिज्ञान अर्थ-वस्तु को ग्रहण करते हैं।

१८—व्यंजन—अप्रकटरूप, पदार्थ का केवल मात्र अवग्रह ही होता है। ईहादिक अन्य तीन नहीं होते।

१९—वह—अप्रकटरूप, पदार्थों का अवग्रह नेत्र और मन से नहीं होता है। केवल मात्र शेष चार इन्द्रियों से ही होता है।

२०—श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है उस के अङ्गबाह्य और अंगप्रविष्ट ये दो मुख्य भेद हैं। उसमें पहिला अनेक भेद वाला तथा दूसरा बारह भेद वाला है।

२१—अवधिज्ञान भवप्रत्यय और गुण प्रत्यय के भेद से दो प्रकार का होता है।

२२—भवप्रत्यय अवधिज्ञान नारक और देवताओं को होता है।

२३—अर्थात्—हुए मनुष्यों और तिर्यंचों को क्षयोपश मजन्य अवधि ज्ञान होता है और वह अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित के भेद से छः प्रकार का है।

ऋजुविपुलमती मनःपर्यायः ॥२४॥

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२५॥

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः-
पर्याययोः ॥२६॥

मतिश्रुतयोर्निबन्धः सर्वद्रव्येष्वसर्व-
पर्यायेषु ॥२७॥

रूपिष्ववधेः ॥२८॥

तदनन्तभागे मनःपर्यायस्य ॥२९॥

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥३०॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना
चतुर्भ्यः ॥३१॥

मतिश्रुताऽवधयो विपर्ययश्च ॥३२॥

२४—ऋजुमति और विपुलमति ये दो मनःपर्याय ज्ञान के भेद हैं।

२५—ऋजुमति और विपुलमति में विशुद्धिः—शुद्धताः और अप्रतिपात—आया हुआ नहीं जावे, इन दोनों की अपेक्षा से अन्तर है।

२६—विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय द्वारा अवधि और मनःपर्याय का अन्तर जानना चाहिए।

२७—मति और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति—ग्राह्यता सर्व पर्याय रहित अर्थात् परिमित पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है।

२८—अवधिज्ञान की प्रवृत्ति सर्व पर्याय रहित केवल रूपी-मूर्त द्रव्यों में होती है।

२९—मनःपर्यायज्ञान की प्रवृत्ति उस रूपी द्रव्य के सर्व पर्याय रहित अनन्तवें भाग में होती है।

३०—केवल ज्ञान की प्रवृत्ति सभी द्रव्यों में और सभी पर्यायों में होती है।

३१—एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर चार ज्ञान तक हो सकते हैं।

३२—मति, श्रुत और अवधि ये तीनों विपरीत अर्थात् अज्ञान रूप भी होते हैं।

सदसतोरविशेषाद् यदृच्छोपलब्धे-
रुन्मत्तवत् ॥३३॥

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा नयाः ॥३४॥

आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ ॥३५॥

३३ – उन्मत्त की तरह सत् असत् के विवेक शून्य यदृच्छा
ा को मिथ्याज्ञान-अज्ञान कहा है।

३४—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द (समभिरूढ़
(एवंभूत) ये नय के पाँच भेद हैं।

३५—पहिले अर्थात् नैगम के देशपरिक्षेपी और सर्व परि-
। ये दो भेद हैं, तथा दूसरे शब्द नय के सांप्रत, समभिरूढ़
(एवंभूत ये तीन भेद हैं।

द्वितीयोऽध्यायः ।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य-
स्वत्तवमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदायथाक्रमम् ॥२।

सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणिच ॥४

ज्ञानाज्ञान दर्शनदानादिलब्धयश्चतुस्त्रित्रि-
पञ्चभेदाः यथाक्रमं सम्यक्त्वचारित्रसंयमा
संयमाश्च ॥५॥

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयताऽ-
सिद्धत्वलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकषड्भेदाः ॥६

दूसरा अध्याय

१—औपशमिक, क्षायिक, मिश्र—क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ये पाँच भाव जीव के स्वतत्त्व हैं।

२—उक्त पाँच भावों के अनुक्रम से दो, नव, अट्ठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं।

३—औपशमिक भाव के सम्यक्त्व और चारित्र ये दो भेद हैं।

४—केवल ज्ञान, केवल दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य तथा सम्यक्त्व और चरित्र ये नव भेद क्षायिक भाव के हैं।

५—चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, दानादि पांचलब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम में अट्ठारह भेद क्षायोपशमिक के हैं।

६—चार गति, चार कषाय, तीन वेद, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, छः लेश्या इस तरह कुल मिलाकर इक्कीस भेद औदयिक भाव के हैं।

जीवभव्याभव्यत्वादीनि च ॥७॥

उपयोगो लक्षणम् ॥८॥

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥

संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥

समनस्काऽमनस्काः ॥११॥

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः ॥१४॥

पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥

७—जीवत्व भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव हैं तथा च शब्द से अस्तित्व, नित्यत्व प्रदेशत्व आदि भावों का भी ग्रहण होता है।

८—उपयोग यह जीव का लक्षण है।

९—वह उपयोग दो प्रकार का है ज्ञानोपयोग व दर्शनोपयोग। पहला ज्ञानोपयोग मतिज्ञानादि के भेद से आठ प्रकार का है तथा दूसरा दर्शनोपयोग चक्षुदर्शनादि के भेद से चार प्रकार का है।

१०—संसारी और मुक्त अवस्था के भेद से जीव दो प्रकार के हैं।

११—मन सहित संज्ञी, और मन रहित असंज्ञी, ये संसारी जीवों के दो के भेद हैं।

१२—संसारी जीवों के त्रस और स्थावर ये भी दो भेद हैं।

१३—पृथ्वीकाय, जलकाय, और वनस्पतिकाय ये तीनों स्थावर जीवों के भेद हैं!

१४—अग्निकाय, वायुकाय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की त्रस संज्ञा है।

१५—स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियाँ हैं।

द्विविधानि ॥१६॥

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥

उपयोगः स्पर्शादिषु ॥१९॥

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥२०॥

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तेषामर्थाः ॥२१॥

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२२॥

वाग्वन्तानामेकम् ॥२३॥

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामे-
कैकवृद्धानि ॥२४॥

संज्ञिनः समनस्काः ॥२५॥

१६—वे इन्द्रियाँ द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के भेद से दो प्रकार की हैं।

१७—दृश्यमान बाह्य आकृतिरूप निवृत्ति इन्द्रिय, और बाह्य तथा आन्तरिक पौद्गलिक शक्ति विशेष उपकरण इन्द्रिय—इस प्रकार द्रव्येन्द्रिय के दो भेद हैं।

१८— लब्धि—क्षयोपशम विशेष, और उपयोग—बोधरूप व्यापार, ये दो भेद भावेन्द्रिय के हैं।

१९—स्पर्शादि विषयों में उपयोग होता है।

२०—स्पर्शन = त्वचा, रसना = जीभ, घ्राण=नाक, चक्षु= आँख, और श्रोत्र = कान, ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।

२१—स्पर्श, रस, गंध,वर्ण और शब्द, ये पूर्वोक्त पाँच इंद्रियों के अनुक्रम से विषय हैं।

२२—श्रुतज्ञान, अनिन्द्रिय = मन का विषय है।

२३—पृथ्वीकाय से लेकर वायुकाय तक जीवों के केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

२४— कृमि=कीड़ा, पिपीलिका = कीड़ी, भ्रमर = भौंरा, और मनुष्य आदि के क्रम से एक एक इन्द्रिय अधिक होती है।

२५—संज्ञी जीव ही मन वाले होते हैं।

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२६॥

अनुश्रेणि गतिः ॥२७॥

अविग्रहा जीवस्य ॥२८॥

विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥२९॥

एकसमयोऽविग्रहः ॥३०॥

एकं द्वौ वाऽनाहारकः ॥३१॥

सम्मूर्छनगर्भोपपाता जन्म ॥३२॥

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैक-
शस्तद्योनयः ॥३३॥

२६—विग्रह गति में कार्मण-योग ही होता है।

२७—गति, अनुश्रेणि अर्थात् सरल रेखा के अनुसार होती है।

२८—मोक्ष में जाते हुये जीव की गति विग्रह रहित होती है।

२९—संसारी आत्मा की गति अविग्रह और सविग्रह होती है। विग्रह चार से पहले अर्थात् तीन तक हो सकते हैं।

३०—अविग्रह गति केवल एक समय की होती है।

३१—विग्रह गति में एक, अथवा दो समय तक जीव अनाहारक होता है।

३२—संसारी जीवों के सम्मूर्छन, गर्भ और उपपात ये तीन प्रकार के जन्म होते हैं।

३३—तीन प्रकार के जन्म वाले जीवों की सचित्त, शीत और संवृत्त—गुप्त, तथा इनके प्रतिपक्षी अचित्त, उष्ण और विवृत—प्रकट, तथा मिश्र अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण एवं संवृत-विवृत ये नव योनियाँ होती हैं।

जराय्वण्डपोतजानां गर्भः ॥३४॥

नारकदेवानामुपपातः ॥३५॥

शेषाणां सम्मूर्छनम् ॥३६॥

औदारिकवैक्रियाऽऽहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३७॥

परं परं सूक्ष्मम् ॥३८॥

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३९॥

अनन्तगुणे परे ॥४०॥

अप्रतिघाते ॥४१॥

अनादिसम्बन्धे च ॥४२॥

३४—जरायु से पैदा होने वाले, अंडे से पैदा होने वाले तथा पोतज जीवों का गर्भ जन्म होता है।

३५—नारक का और देवों का उपपात जन्म होता है।

३६—शेष जीवों का सम्मूर्छन जन्म होता है।

३७—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच प्रकार के शरीर होते हैं।

३८—उक्त पाँचों शरीरों में आगे आगे के शरीर पूर्व पूर्व शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म हैं।

३९—तैजस के पूर्ववर्ती तीन शरीरों में पूर्व पूर्व की अपेक्षा उत्तर उत्तर शरीर प्रदेशों—स्कन्धों से असंख्यात गुण अधिक होता है।

४०—आगे के दो शरीर तैजस और कार्मण पहिले के शरीरों की अपेक्षा अनंत गुणे प्रदेश वाले हैं। अर्थात् आहारक से तैजस के और तैजस से कार्मण के प्रदेश अनंत गुणे होते हैं।

४१—तैजस और कार्मण शरीर प्रतिघात—बाधा-रहित हैं।

४२—ये दोनों शरीर आत्मा के साथ अनादि काल से संबंध रखने वाले हैं।

सर्वस्य ॥४३॥

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्याचतुर्भ्यः॥४४॥

निरुपभोगमन्त्यम् ॥४५॥

गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥४६॥

वैक्रियमौपपातिकम् ॥४७॥

लब्धिप्रत्ययं च ॥४८॥

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं चतुर्दशपूर्वधरस्यैव ॥४९॥

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

न देवाः ॥५१॥

औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५२॥

४३--ये दोनों शरीर सब संसारी जीवों के होते हैं।

४४—एक साथ एक जीव के शरीर-तैजस, कार्मण से लेकर चार तक-विकल्प से होते हैं।

४५—केवल अंतिम कार्मण शरीर उपभोग अर्थात् सुख दुःख आदि के अनुभव से रहित है।

४६--पहिला औदारिक शरीर गर्भ और सम्मूर्छन से पैदा होने वाले जीवों के होता है।

४७--उपपात जन्म से होने वाले जीवों के वैक्रिय शरीर होता है।

४८—तपोविशेष से लब्धि प्राप्त जीवों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

४९—आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याघात रहित होता है तथा यह चौदह पूर्वधारी मुनियों के ही होता है।

५०—नारकी और सम्मूर्छन जीव नपुंसक ही होते हैं।

५१—देव नपुंसक नहीं होते हैं।

५२--उपपात जन्म से होने वाले देव नारक तथा चरम शरीरी, उत्तम पुरुष और असंख्यात वर्ष की आयु वाले, ये सब अनपवर्तनीय आयुष्य वाले ही होते हैं।

तृतीयोऽध्यायः

रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा-
भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः
सप्ताधोऽधःपृथुतराः ॥१॥

तासु नरकाः ॥२॥

नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदना-
विक्रियाः ॥३॥

परस्परोदीरितदुःखाः ॥४॥

संक्लिष्टासुरोदीरितदुखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंश-
त्सागरोपमाः सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥

जम्बूद्वीपलवणादयः शुभनामानो
द्वीपसमुद्राः ॥७॥

तीसरा अध्याय

१—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात भूमियाँ हैं। जो घनाम्बु, वात और आकाश पर स्थित हैं, एक दूसरे के नीचे हैं, तथा नीचे की ओर अधिक अधिक विस्तीर्ण हैं।

२—उन भूमियों में नरक हैं।

३—वे नरक नित्य अशुभतर लेश्या, परिणाम, शरीर, वेदना और विक्रिया वाले हैं।

४—और ये परस्पर उत्पन्न किये गये दुःख वाले होते हैं।

५—तथा संक्लिष्ट परिणाम वाले असुर जाति के देव भी चौथे नरक के पहले पहले अर्थात् तीसरे नरक तक अनेक कष्ट पहुँचाते हैं।

६—उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस तथा तेंतीस सागरोपम की है।

७—जम्बूद्वीप तथा लवणोदधि आदि शुभ नाम वाले असंख्यात द्वीप समुद्र हैं।

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥

तन्मध्ये मेरु नाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

तत्र भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो-वर्षधरपर्वताः ॥११॥

द्विर्धातकीखण्डे ॥१२॥

पुष्करार्धे च ॥१३॥

८—वे सभी द्वीप और समुद्र, वलय—चूड़ी जैसी आकृति वाले, पूर्व पूर्व को वेष्टित करने वाले और दूने दूने विष्कम्भ—व्यास अर्थात् विस्तार वाले हैं।

९—उन सब के बीच में जम्बूद्वीप है, जो वृत्त—गोल है, लाख योजन विष्कम्भ वाला है और जिसके मध्य में मेरू पर्वत है।

१०—जम्बुद्वीप में भारतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष,—ये सात क्षेत्र हैं।

११—उन क्षेत्रों को पृथक् करने वाले और पूर्व-पश्चिम लम्बे ऐसे हिमवान् महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी, और शिखरी—ये छः वर्ष धर पर्वत हैं।

१२—धातकी खण्ड नामक दूसरे द्वीप में भरत-आदि क्षेत्र और पर्वत दो दो हैं।

१३—पुष्कर द्वीप के आधे भाग में भी धातकी खण्ड के समान भरतादिक क्षेत्र और पर्वत जम्बुद्वीप से दुगुने हैं।

प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥१४॥

आर्या म्लेच्छाश्च ॥१५॥

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥१६॥

नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।१७

तिर्यग्योनीनां च ॥१८॥

१४—मानुषोत्तर पर्वत के पहिले पहिले ही अढ़ाई द्वीप में मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

१५—ये मनुष्य आर्य और म्लेच्छ के भेद से दो प्रकार के हैं।

१६—देवकुरू और उत्तर कुरू क्षेत्रों को छोड़कर पाँच भरत पाँच ऐरावत और पाँच विदेह इस प्रकार पन्द्रह कर्म भूमिया हैं।

१७—मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की, तथा जघन्य स्थिति अन्त-मुहूर्त की है।

१८—तिर्यंचों की भी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की व जघन्य अंतर्मुहूर्त की है।

चतुर्थोऽध्यायः

देवाश्चतुर्निकायाः ॥१॥

तृतीयः पीतलेश्यः ॥२॥

दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्न-
पर्यन्ताः ॥३॥

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषद्यात्मरक्षलोक-
पालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चै-
कशः ॥४॥

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या
व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥

चौथा अध्याय

१—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक—इस प्रकार देवों के चार निकाय हैं।

२—तीसरे निकाय के देव—ज्योतिष्क, पीतलेश्या वाले होते हैं।

३—भवनवासी के दस, व्यंतर के आठ, ज्योतिष्क के पाँच और कल्पोपपन्न वैमानिक के बारह भेद हैं।

४—इन चारों प्रकार के देवों में प्रत्येक के 'इन्द्र, सामानिक आयु आदि में इंद्र के समान, किन्तु इन्द्र पद रहित, त्रायस्त्रिंश =मंत्री अथवा पुरोहित तुल्य परिषद्=मित्र तुल्य, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक=सेना तुल्य, प्रकीर्णक=प्रजा स्थानीय, आभियोग्य=दास तुल्य, किल्बिषिक = अन्त्यज समान, दस दस भेद होते हैं।

५—व्यंतर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल दो भेद नहीं होते हैं।

६—पहिले के दो निकायों में दो दो इन्द्र होते हैं।

पीतान्तलेश्याः ॥७॥

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥८॥

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचारा-
द्वयोर्द्वयोः ॥९॥

परेऽप्रवीचाराः ॥१०॥

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्त-
नितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः॥११॥
व्यन्तराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगान्धर्वयक्ष-
राक्षसभूतपिशाचाः ॥१२॥
ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्ण-
तारकाश्च ॥१३॥

७—प्रथम के दो निकायों में—भवनपति और व्यतर में, कृष्ण नील, कापोत और तेज ये चार लेश्याएं होती हैं।

८—ईशान स्वर्ग तक के देव मनुष्यों के समान शरीर से विषय सुख भोगने वाले होते हैं।

९—शेष दो दो कल्प के देव क्रमशः स्पर्श, रूप, शब्द और सङ्कल्प द्वारा विषय सुख भोगते हैं।

१०—शेष ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देव विषय सेवन से रहित हैं।

११—भवनवासी देव-(१) असुरकुमार (२) नागकुमार (३) विद्युत्कुमार (४) सुपर्णकुमार (५) अग्निकुमार (६) वायुकुमार (७) स्तनितकुमार (८) उदधिकुमार (९) द्वीपकुमार (१०) दिक्कुमार के भेद से दस प्रकार के हैं।

१२—(१) किन्नर (२) किम्पुरुष (३) महोरग (४) गन्धर्व (५) यक्ष (६) राक्षस (७) भूत (८) और पिशाच ये आठ प्रकार के व्यंतर देव होते हैं।

१३—ज्योतिष्क देव-(१) सूर्य (२) चन्द्रमा (३) ग्रह (४) नक्षत्र (५) और प्रकीर्ण-तारे इस तरह पाँच प्रकार के हैं।

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१४॥

तत्कृतः कालविभागः ॥१५॥

बहिरवस्थिताः ॥१६॥

वैमानिकाः ॥१७॥

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१८॥

उपर्युपरि ॥१९॥

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकमहाशुक्रसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्ताऽपराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च ॥२०॥

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२१॥

१४—ये सब ज्योतिष्क देव मनुष्य लोक में सुमेरू पर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए निरंतर गमन करने वाले हैं।

१५—घड़ी पल आदि काल का विभाग इन्हीं चर ज्योतिष्कों द्वारा होता है।

१६—मनुष्य लोक से बाहर वे सब ज्योतिष्क स्थित हैं।

१७—विमानों में रहने वाले वैमानिक देव कहलाते हैं।

१८—उक्त वैमानिक देव कल्पोपपन्न और कल्पातीत के भेद से दो प्रकार के हैं।

१९—वे एक एक से ऊपर स्थित हैं।

२०—सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लातङ्क, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन १२ स्वर्गों में तथा नव ग्रैवेयक और विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्ध में वैमानिक देवों का निवास है।

२१—आयु, प्रभाव, सुख, कान्ति, लेश्या की विशुद्धि, इंद्रियों का और अवधिज्ञान का विषय ये सब ऊपर ऊपर के देवताओं में अधिक है।

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२२॥

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२३॥

प्राग् ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२४॥

ब्रह्मलोकालया लोकान्तिकाः ॥२५॥

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्या-
बाधमरुतोऽरिष्टाश्च ॥२६॥

विजयादिषु द्विचरमाः ॥२७॥

औपपातिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्यो-
नयः ॥२८॥

स्थितिः ॥२९॥

२२—किंतु गति, शरीर का परिमाण, परिग्रह और अभिमान इन विषयों में ऊपर २ के देव हीन हैं।

२३—सौधर्म और ऐशान में पीतलेश्या, सानत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्म में पद्मलेश्या और लातङ्क से लेकर सर्वार्थ सिद्ध तक शुक्ल लेश्या होती हैं।

२४—ग्रैवेयकों से पहिले के स्वर्ग कल्प संज्ञा वाले अर्थात् इंद्रादिक भेद वाले हैं।

२५—जो पाँचवे ब्रह्म स्वर्ग के अन्त में रहते हैं, वे लोकान्तिक देव हैं।

२६—सारस्वत, आदित्य, बह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, मरुत् और अरिष्ट ये नौ प्रकार के लोकान्तिक देव हैं।

२७—विजयादिक चार विमानों में देव द्विचरम अर्थात् दो वार मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष पाते हैं। सर्वार्थसिद्ध के देव एक भवावतारी होते हैं।

२८—देव, नारक और मनुष्यों के अतिरिक्त शेष सब जीव तिर्यंच हैं।

२९—अब आयु का वर्णन करते हैं।

भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्य-
र्धम् ॥३०॥

शेषाणां पादोने ॥३१॥

असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च ॥३२॥

सौधर्मादिषु यथाक्रमम् ॥३३॥

सागरोपमे ॥३४॥

अधिके च ॥३५॥

सप्त सानत्कुमारे ॥३६॥

विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिर-
धिकानि च ॥३७॥

३०—भवनवासियों के दक्षिणार्ध इंद्रों की उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ पल्योपम की होती है।

३१—शेष के अर्थात् उत्तरार्ध इंद्रों की उत्कृष्ट स्थिति पौने दो पल्योपम की है।

३२—असुरकुमार के दक्षिणार्धपति की एक सागरोपम तथा उत्तरार्धाधिपति की एक सागरोपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

३३—सौधर्मादि देवलोक में निम्न क्रमानुसार स्थिति जानना चाहिए।

३४—सौधर्म देवलोक के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागरोपम की है।

३५—ऐशान देवलोक के देवों की दो सागरोपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

३६—सानत्कुमार देवलोक में देवों की सात सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

३७—माहेन्द्र देवलोक में सात सागरोपम से अधिक, ब्रह्म-लोक में दस, लान्तक में चौदह, महाशुक्र में सत्रह, सहसार में अठ्ठारह, आनत प्राणत में बीस और आरण अच्युत में बाईस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धे च ॥३८॥

अपरा पल्योपममधिकं च ॥३९॥

सागरोपमे ॥४०॥

अधिके च ॥४१॥

परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥४२॥

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥४३॥

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥४४॥

भवनेषु च ॥४५॥

व्यन्तराणां च ॥४६॥

परा पल्योपमम् ॥४७॥

ज्योतिष्काणामधिकम् ॥४८॥

३८—आरण अच्युत से ऊपर नव ग्रैवयेक; चार विजयादि अनुत्तर और सर्वार्थ सिद्ध में क्रम से एक २ सागरोपम की बढ़ती हुई आयु है।

३९—सौधर्म देवलोक में जघन्य स्थिति एक पल्योपम की तथा ऐशान में एक पल्योपम से कुछ अधिक जघन्य स्थिति है।

४०—सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागरोपम की है।

४१—माहेन्द्र में दो सागरोपम से कुछ अधिक है।

४२—पहिले पहिले कल्प की उत्कृष्ठ स्थिति आगे आगे के कल्पों में जघन्य है। सर्वार्थ सिद्ध में जघन्य स्थिति नहीं होती।

४३—इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि नरकों में भी जघन्य आयु समझ लेनी चाहिए।

४४—पहिले नरक में दस हजार वर्ष की जघन्य आयु है।

४५—भवनवासियों में भी जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है।

४६—व्यंतर देवों की भी जघन्य स्थिति इतनी ही है।

४७—व्यंतरों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की है।

४८—ज्योतिष्कों की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम से कुछ अधिक है।

ग्रहाणामेकम् ॥४९॥

नक्षत्राणामर्धम् ॥५०॥

तारकाणां चतुर्भागः ॥५१॥

जघन्या त्वष्टभागः ॥५२॥

चतुर्भागः शेषाणाम् ॥५३॥

४९—ग्रहों की एक एक पल्योपम की उत्कृष्ट स्थित है।

५०—नक्षत्रों की उत्कृष्ट स्थिति आधे पल्योपम की है।

५१—ताराओं की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के चौथे भाग प्रमाण है।

५२—ताराओं की जघन्य स्थिति एक पल्योपम के आठवें भाग परिमाण हैं।

५३—ताराओं के सिवाय बाकी के ज्योतिष्कों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम का चौथा भाग प्रमाण है।

पञ्चमोऽध्यायः ।

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥

द्रव्याणि जीवाश्च ॥२॥

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥३॥

रूपिणः पुद्गलाः ॥४॥

आकाशादेकद्रव्याणि ॥५॥

निष्क्रियाणि च ॥६॥

असङ्ख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मयोः ॥७॥

जीवस्य च ॥८॥

आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

सङ्ख्येयासङ्ख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

पाँचवाँ अध्याय

१—धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार द्रव्य अजीव काय अर्थात् अचेतन और बहु प्रदेशी पदार्थ हैं।

२—पूर्वोक्त चार अजीवकाय और जीव पाँचों द्रव्य हैं।

३—ये द्रव्य नित्य—कभी नष्ट नहीं होने वाले, अवस्थित संख्या में घटने बढ़ने से रहित, और अरूपी हैं।

४—किन्तु पुद्गल द्रव्य रूपी है।

५—धर्मास्तिकाय से लेकर आकाश तक द्रव्य एक एक हैं।

६—और ये तीनों ही द्रव्य चलन रूप क्रिया से रहित हैं।

७—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के प्रदेश असंख्यात हैं।

८—और एक जीव के प्रदेश भी असंख्यात् हैं।

९—आकाश के अनंत प्रदेश हैं। किंतु लोकाकाश के असंख्यात् प्रदेश हैं।

१०—पुद्गलों के प्रदेश संख्यात, असंख्यात् और अनंत होते हैं।

नाणोः ॥११॥

लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥

असङ्ख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥१५॥

प्रदेशसंहारविसर्गाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥

गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥

आकाशस्यावगाहः ॥१८॥

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥

११—अणु-परमाणु के प्रदेश नहीं होते।

१२—इन समस्त धर्मादि द्रव्यों की स्थिति लोकाकाश में है।

१३—धर्म और अधर्म द्रव्यों की स्थिति समग्र लोकाकाश में है

१४—पुद्गलों की स्थिति लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प अनियतरूप से जानना चाहिये।

१५—लोक के असंख्यातवें भाग आदि में जीवों का अवगाह हैं।

१६—क्योंकि दीपक के प्रकाश के समान जीवों के प्रदेशों में संकोच और विस्तार होता है।

१७—जीव और पुद्गलों की गति क्रिया में धर्म तथा स्थिति क्रिया में अधर्म द्रव्य सहकारी है।

१८—अवकाश अर्थात् जगह देना यह अवकाश द्रव्य का उपकार है।

१९—शरीर, वचन, मन, उच्छ्वास, निःश्वास यह पुद्गलों का उपकार है।

२०—तथा सुख, दुःख जीवन, मरण ये उपकार भी पुद्गलों के हैं।

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥

वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥

अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥

संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥

भेदादणुः ॥२७॥

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः ॥२८॥

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥२९॥

२१—हिताहित के उपदेश से परस्पर एक दूसरे का सहायक होना जीवों का उपकार है।

२२—वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये पाँच काल के उपकार हैं।

२३—स्पर्श, रस, गंध और वर्ण वाले पुद्गल द्रव्य हैं॥

२४—तथा ये पुद्गल शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान भेद, अन्धकार, छाया, आतप-धूप, उद्द्योत-शीतलप्रकाश वाले भी हैं।

२५—पुद्गल परमाणुरूप और स्कन्धरूप है।

२६—संघात = एकत्रित करना, भेद = भाग करना, और संघात भेद इन तीनों कारणों से स्कन्ध पैदा होते हैं।

२७—अणु भेद से ही होता है, संघात से नहीं।

२८—जो नेत्रेन्द्रिय गोचर स्कंध होता है वह भेद और संघात दोनों से ही होता है।

२९—जो उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता युक्त है वही सत् है।

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३०॥

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३१॥

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥३२॥

न जघन्यगुणानाम् ॥३३॥

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३४॥

द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥३५॥

बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ ॥३६॥

गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ॥३७॥

कालश्चेत्येके ॥३८॥

सोऽनन्तसमयः ॥३९॥

028968

३०—जो अपने स्वरूप से नाश को प्राप्त नहीं होता है, वही नित्य है।

३१—वस्तु में अनेक धर्म होते हैं। जो मुख्य हो वह अर्पित और जो गौण हो वह अनर्पित है। इन दोनों नयों से वस्तु व्यवहार की सिद्धि होती है।

३२—स्निग्धत्व और रुक्षत्व से बन्ध होता है।

३३—एक गुण अंश वाले परमाणुओं का बन्ध नहीं होता।

३४—गुण की समानता होने पर भी सदृश पुद्गलों का बंध नहीं होता।

३५—किन्तु दो अधिक आदि गुण वालों का ही बंध होता है।

३६—बन्ध के समय सम और अधिक गुण, सम तथा हीन गुण के परिणमन कराने वाले होते हैं।

३७—द्रव्य, गुण-पर्याय वाला है।

३८—कोई कोई आचार्य काल को भी द्रव्य मानते हैं।

३९—वह काल द्रव्य अनंत समय वाला है। यद्यपि वर्तमान काल एक समयात्मक है परन्तु भूत, भविष्यत्, वर्तमान की अपेक्षा अनंत समय वाला है।

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४०॥

तद्भावः परिणामः ॥४१॥

अनादिरादिमांश्च ॥४२॥

रूपिष्वादिमान् ॥४३॥

योगोपयोगौ जीवेषु ॥४४॥

४०—जो द्रव्य के नित्य आश्रित रहते हों और स्वयं गुणों से रहित हों वे गुण हैं।

४१—स्वरूप में स्थित होते हुए भी उत्पाद विनाश रूप परिणमन होना परिणाम हैं।

४२—वह परिणमन अनादि और सादि दो प्रकार का होता है।

४३—रूपी द्रव्यों में सादि परिणमन होता है।

४४—जीवों में योग और उपयोग रूप परिणमन सादि है।

षष्ठोऽध्यायः

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥१॥

स आस्रवः ॥२॥

शुभः पुण्यस्य ॥३॥

अशुभः पापस्य ॥४॥

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः॥५॥

अव्रतकषायेन्द्रियक्रियाः पञ्चचतुः पञ्चपञ्च-
विंशतिसङ्ख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥६॥

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभाववीर्याधिकरणविशेषेभ्य
स्तद्विशेषः ॥७॥

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥८॥

छठा अध्याय

१—शरीर, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं।

२—वह योग ही कर्मों के आगमन का द्वार रूप आश्रव है।

३—शुभ योग पुण्य का आस्रव है।

४—अशुभ योग पाप का आस्रव है।

५—कषाय सहित जीवों के साम्परायिक और कषाय रहित जीवों के ईर्यापथ आश्रव होता है।

६—पाँच अव्रत, चार कषाय, पांच इन्द्रिय और पच्चीस क्रिया ये सब पहिले साम्परायिक आश्रव के भेद हैं।

७—तीव्र भाव, मंद भाव, ज्ञात भाव, अज्ञातभाव, वीर्य और अधिकरण की विशेषता से उस आश्रव में विशेषता अर्थात् न्यूनाधिकता होती है।

८—आश्रव का आधार जीव और अजीव दोनों हैं।

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानु-
मतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥९॥

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः
परम् ॥१०॥

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता
ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥११॥

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरो-
भयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥१२॥

भूतव्रत्यनुकम्पा दानं सरागसंयमादियोगः
क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१३॥

केवलिश्रुतसङ्घधर्मदेवावर्णवादो दर्शन-
मोहस्य ॥१४॥

९—पहला जीवरूप अधिकरण क्रमशः सरम्भ, समारम्भ, आरम्भ भेद से तीन प्रकार का, योगभेद से तीन प्रकार का, कृत, कारित, अनुमतभेद से तीन प्रकार का और कषायभेद से चार प्रकार का है।

१०—पर अर्थात् अजीवाधिकरण अनुक्रम से दो भेद, चार भेद, दो भेद और तीन भेद वाले निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्ग रूप है।

११—तत्प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण कर्म तथा दर्शनावरण कर्म के बन्ध हेतु आश्रव हैं।

१२—निज आत्मा में, पर आत्मा में या दोनों आत्मा में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असातवेदनीय कर्म के बन्ध हेतु हैं।

१३—भूत-अनुकम्पा, व्रति-अनुकम्पा, दान, सराग-संयमादि योग, शान्ति और शौच में सात वेदनीय कर्म के बन्ध हेतु हैं।

१४—केवलज्ञानी, श्रुत, संघ, धर्म और देव का अवर्णवाद दर्शन मोहनीय कर्म का बन्ध हेतु है।

कषायोदयात्तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोह-
स्य॥१५॥

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः ॥१६॥

माया तैर्यग्योनस्य ॥१७॥

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवार्जवं च
मानुषस्य ॥१८॥

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबाल-
तपांसि दैवस्य ॥२०॥

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।२१

विपरीतं शुभस्य ॥२२॥

१५—कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्म परिणाम चारित्रमोहनीय कर्म का बन्ध हेतु है।

१६—बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह ये नरकायु के बन्ध हेतु हैं।

१७—माया तिर्यंच-आयु का बन्ध हेतु है।

१८—अल्प-आरम्भ, अल्प परिग्रह, स्वभाव की मृदुता और स्वभाव की सरलता ये मनुष्य-आयु के बन्धहेतु हैं।

१९—शीलरहित और व्रतरहित होना सभी आयुओं के बन्धहेतु हैं।

२०—सरागसंयम, संयमासंयम अकामनिर्जरा और बाल-तप ये देवायु के बन्धहेतु हैं।

२१—योग की वक्रता और विसंवाद ये अशुभ नामकर्म के बन्ध हेतु हैं।

२२—इसके विपरीत अर्थात् योग की अवक्रता और अविसंवाद शुभ नाम कर्म के बन्धहेतु हैं।

दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी सङ्घसाधुसमाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकृत्त्वस्य ॥२३॥

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणाच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२४॥

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२५॥

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२६॥

२३—दर्शन विशुद्धि, विनयसंपन्नता, शील और व्रतों में अत्यन्त अप्रमाद, ज्ञान में सतत उपयोग, तथा सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग और तप, संघ और साधु की समाधि और वैयावृत्य करना, अरिहंत, आचार्य, बहुश्रुत तथा प्रवचन की भक्ति करना, आवश्यक क्रिया को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचनवात्सल्य ये सब तीर्थंकर नामकर्म के बन्ध हेतु हैं।

२४—परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का आच्छादन और असद्गुणों का प्रकाशन ये नीच गोत्र के बन्ध हेतु हैं।

२५—उनका विपर्यय अर्थात् परप्रशंसा, आत्मनिन्दा आदि तथा नम्रवृत्ति और निरभिमानता ये उच्च गोत्र कर्म के बन्ध हेतु हैं।

२६—दानादि में विघ्न डालना अन्तरायकर्म का बन्ध हेतु हैं।

सप्तमोऽध्यायः

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।१।

देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥

हिंसादिष्विहामुत्र चापायावद्यदर्शनम् ॥४॥

दुःखमेव वा ॥५॥

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणा-
धिकक्लिश्यमानाविनेयेषु ॥६॥

जगत्कायस्वभावौ च संवेगवैराग्यार्थम् ॥७॥

प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥८॥

सातवाँ अध्याय

१—हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह से—मन, वचन, काय द्वारा निवृत्त होना व्रत है।

२—अल्प अंश में विरति—वह अणुव्रत. और सर्वांश में विरति—वह महाव्रत है।

३—उन व्रतों को स्थिर करने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ हैं।

४—हिंसा आदि पाँच दोषों में ऐहिक आपत्ति और पार लौकिक अनिष्ट का दर्शन करना।

५—अथवा उक्त हिंसा आदि दोषों में दुःख ही है, ऐसी भावना करना।

६—प्राणिमात्र में मैत्री वृत्ति, गुणाधिकों में प्रमोद वृत्ति, दुःख पाने वालों में करुणा वृत्ति, और अविनीत जनों पर माध्यस्थ्य वृत्ति रखना।

७—संवेग तथा वैराग्य के लिए जगत के स्वभाव और शरीर के स्वभाव का विचार करना।

८—प्रमत्त योग से होने वाला जो प्राण बध—वह हिंसा है।

असदभिधानमनृतम् ॥९॥

अदत्तादानं स्तेयम् ॥१०॥

मैथुनमब्रह्म ॥११॥

मूर्छा परिग्रहः ॥१२॥

निःशल्यो व्रती ॥१३॥

अगार्यनगारश्च ॥१४॥

अणुव्रतोऽगारी ॥१५॥

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकपौषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसपन्नश्च ॥१६॥

९—असत् बोलना वह अनृत-असत्य है।

१०—बिना दिये लेना—वह स्तेय अर्थात् चोरी है।

११—मैथुन अर्थात् विषय सेवन वह अब्रह्म है।

१२—चेतन अचेतन रूप परिग्रह में ममत्व रूप परिणाम होना परिग्रह है।

१३—जो शल्य रहित हो, वह व्रती हो सकता है।

१४—व्रती, गृहस्थ श्रावक और साधु के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

१५—जो अणुव्रतधारी हो, वह अगारी व्रती कहलाता है।

१६—वह व्रती दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिक, पौषधोपवास, उपभोगपरिभोगपरिमाण, और अतिथि संविभाग इन व्रतों से भी संपन्न होता है।

मारणान्तिकी संलेखनां जोषिता ॥१७॥

शङ्काकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ॥१८॥

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥१९॥

बन्धवधच्छविच्छेदातिभारारोपणान्नपान-निरोधाः ॥२०॥

मिथ्योपदेशरहस्याभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥२१॥

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः।२२।

परविवाहकरणेत्वरपरिगृहीतापरिगृहीतागम-नाङ्गक्रीडातीव्रकामाभिनिवेशाः ॥२३॥

१७—तथा वह मारणान्तिक संलेखना का आराधक भी होता है।

१८—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, और अन्यदृष्टिसंस्तव ये सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार हैं।

१९—व्रतों और शीलों में पाँच-पाँच अतिचार हैं। वे अनुक्रम से इस प्रकार हैं।

२०—बन्ध, वध, छविच्छेद, अतिभार का आरोपण और अन्न पान का निरोध-ये पांच अतिचार प्रथम अणुव्रत के हैं।

२१—मिथ्योपदेश, रहस्याभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्र भेद ये पाँच अतिचार दूसरे अणुव्रत के है।

२२—स्तेनप्रयोग, स्तेन-आहृतादान, विरुद्धराज्य का अतिक्रम, हीन अधिक मानोन्मान और प्रतिरूपक व्यवहार ये पाँच तीसरे अणुव्रत के अतिचार हैं।

२३—परविवाहकरण, इत्वरपरिगृहीतागमन, अपरिगृहीतागमन, अनंगक्रीड़ा और तीव्रकामाभिनिवेश ये पाँच अतिचार चौथे अणुव्रत के हैं।

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदास-
कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥२४॥

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्त-
र्धानानि ॥२५॥

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गल-
क्षेपाः ॥२६॥

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोप-
भोगाधिकत्वानि ॥२७॥

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थाप-
नानि ॥२८॥

२४—क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण का अतिक्रम, हिरण्य और सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम, धन और धान्य के प्रमाण का अतिक्रम, दासी-दास के प्रमाण का अतिक्रम, एवं कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम ये पाँच अतिचार पाँचवें अणुव्रत के हैं।

२५—ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तर्धान ये पाँच अतिचार छठे दिग्विरति व्रत के हैं।

२६—कन्दर्प, कौत्कुच्य मौखर्य, असमीक्ष्य-अधिकरण और उपभोग का अधिकत्व ये पाँच अतिचार आठवें अनर्थदण्ड विरमण व्रत के हैं।

२७—आनयन प्रयोग, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप ये पाँच अतिचार सातवें देश विरति व्रत के हैं।

२८—कायदुष्प्रणिधान, वचनदुष्प्रणिधान, मनोदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृति का अनुपस्थापन ये पाँच अतिचार सामायिकव्रत के हैं।

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादाननिक्षेप-
संस्तारोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थापनानि ।२९।

सचित्तसंबद्धसंमिश्राभिषवदुष्पक्वहाराः ॥३०॥

सचित्तनिक्षेपपिधानपरव्यपदेशमात्सर्यका-
लातिक्रमाः ॥३१॥

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनि-
दानकरणानि ॥३२॥

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३३॥

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात् तद्विशेषः ॥३४॥

२९—अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित में उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित में आदान-निक्षेप, अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित संस्तार का उपक्रमण, अनादर और स्मृति का अनुपस्थापन ये पाँच अतिचार पौषधव्रत के हैं।

३०—सचित्त आहार, सचित्तसंबद्ध आहार, सचित्तसंमिश्र आहार, अभिषव आहार और दुष्पक्व आहार ये पाँच अतिचार भोगोपभोग व्रत के हैं।

३१—सचित्त में निक्षेप, सचित्तपिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम ये पाँच अतिचार अतिथिसंविभाग व्रत के हैं।

३२—जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदानकरण ये मारणान्तिक संलेखना के पाँच अतिचार हैं।

३३—अनुग्रह के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है॥

३४—विधि, देयवस्तु, दाता और ग्राहक की विशेषता से उसकी-दान की विशेषता है।

अष्टमोऽध्यायः

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते ॥२॥

स बन्धः ॥३॥

प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तद्विधयः ॥४॥

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुष्कनामगोत्रान्तरायाः ॥५॥

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥६॥

मत्यादीनाम् ॥७॥

आठवाँ अध्याय

१—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच बन्ध के हेतु हैं।

२—कषाय के सम्बन्ध से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है।

३—वह बंध कहलाता है।

४—प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश ये चार उसके बंध के प्रकार हैं।

५—पहला अर्थात् प्रकृतिबन्ध, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय आयुष्क, नाम, गोत्र और अन्तराय रूप है।

६—आठ मूलप्रकृतियों के अनुक्रम से पाँच, नव, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पाँच भेद हैं।

७—(१) मतिज्ञानावरण (२) श्रुतज्ञानावरण (३) अवधिज्ञानावरण (४) मनः पर्याय ज्ञानावरण और केवल ज्ञानावरण ऐसे पाँच भेद ज्ञानावरण के हैं।

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्रा-
प्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिवेदनीयानि
च ॥८॥

सदसद्वेद्ये ॥९॥

दर्शनचारित्रमोहनीयकषायनोकषायवेदनी-
याख्यास्त्रिद्विषोडशनवभेदाः सम्यक्त्वमिथ्या-
त्वतदुभयानि कषायनोकषायावनन्तानुबन्ध्य-
प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनवि-
कल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभा हास्य-
रत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसक-
वेदाः ॥१०॥

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥११॥

८—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन केवलदर्शन इन चारों के आवरण तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पाँच वेदनीय ऐसे नव दर्शनावरणीय हैं।

९—वेदनीय कर्म के साता वेदनीय और असाता वेदनीय ये दो भेद हैं।

१०—दर्शनमोह, चारित्रमोह, कषायवेदनीय और नोकषाय वेदनीय इनके अनुक्रम से तीन, दो, सोलह और नव भेद हैं, जैसे—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, तदुभय-सम्यक्त्वमिथ्यात्व ये तीन दर्शनमोहनीय हैं। कषाय और नोकषाय ये दो चारित्रमोहनीय हैं। जिनमें से क्रोध, मान, माया और लोभ ये प्रत्येक अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन रूप से चार चार प्रकार के होने से सोलह भेद कषायचारित्र मोहनीय के बनते हैं, तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद ये नवनोकषाय चारित्रमोहनीय हैं।

११—नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इस तरह आयु कर्म की चार प्रकृतियें हैं।

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसङ्घात-
संस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यगुरु-
लघूपघातपराघातातपोद्द्योतोच्छ्वासविहा-
योगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभ-
सूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेययशांसि सेतराणि तीर्थ-
कृत्त्वं च ॥१२॥

उच्चैर्नीचैश्च ॥१३॥

दानादीनाम् ॥१४॥

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरो-
पमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१५॥

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१६॥

नामगोत्रयोर्विंशतिः ॥१७॥

१२—गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति, और प्रतिपक्ष सहित अर्थात् साधारण और प्रत्येक, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दुःस्वर और सुस्वर, अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म, अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर अनादेय और आदेय, अयश और यश, एवं तीर्थंकरत्व यह बयालीस प्रकार का नामकर्म है।

१३—उच्च और नीच दो प्रकार का गोत्रकर्म है।

१४—दानादि में विघ्न करने वाला अन्तरायकर्म है। उसके (१) दानांतराय, (२) लाभांतराय, (३) भोगांतराय, (४) उपभोगान्तराय (५) वीर्यान्तराय ये पाँच भेद हैं।

१५—पहली तीन प्रकृतियां अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन चार की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटी कोटी सागरोपम प्रमाण है।

१६—मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटीकोटी सागरो प्रमाण है।

१७—आयुष्क की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम प्रमाण है।

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष्कस्य ॥१८॥

अपराद्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१९॥

नामगोत्रयोरष्टौ ॥२०॥

शेषाणामन्तर्मुहूर्तम् ॥२१॥

विपाकोऽनुभावः ॥२२॥

स यथानाम् ॥२३॥

ततश्च निर्जरा ॥२४॥

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैक-
क्षेत्रावगाढस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्ता-
नन्तप्रदेशाः ॥२५॥

सद्वेद्यसम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदशुभायुर्ना-
मगोत्राणि पुण्यम् ॥२६॥

१८—आयुष्क की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम प्रमाण है।

१९—जघन्य स्थिति वेदनीय की बारह मुहूर्त प्रमाण है।

२०—नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त प्रमाण है।

२१—बाकी के पाँच अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय और आयुष्क की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

२२—विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति ही अनुभाव कहलाती है।

२३—वह अनुभाव भिन्न-भिन्न कर्म की प्रकृति किंवा स्वभाव के अनुसार वेदन किया जाता है।

२४—उससे अर्थात् वेदन से निर्जरा होती है।

२५—कर्म (प्रकृति) के कारणभूत सूक्ष्म, एक क्षेत्र को अवगाहन करके रहे हुए तथा अनन्तानन्त प्रदेश वाले पुद्गल योग विशेष से सभी ओर से सभी आत्मप्रदेशों में बन्ध को प्राप्त होते हैं।

२६—सातावेदनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, हास्य, रति, पुरुष वेद, शुभ, आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र इतनी प्रकृतियाँ ही पुण्य रूप हैं, बाकी की सभी पाप रूप हैं।

नवमोऽध्यायः

आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजय-
चारित्रैः ॥२॥

तपसा निर्जरा च ॥३॥

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।५

उत्तमः क्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतप-
स्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यात्वाशुचित्वा-
स्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यात-
त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥

नवाँ अध्याय

१—आश्रव का निरोध ही संवर है।

२—गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र इनसे वह संवर होता है।

३—तप से निर्जरा और संवर दोनों होते हैं।

४—प्रशस्त जो योगों का निग्रह-वह गुप्ति है।

५—सम्यग्-निर्दोष ईर्या, सम्यग् भाषा, सम्यग् एषणा, सम्यग् आदान-निक्षेप और सम्यग् उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं।

६—क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, और ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का उत्तम धर्म है।

७—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभत्व और धर्म का स्वाख्यातत्व इनका जो अनुचिन्तन है वे ही अनुप्रेक्षाएँ हैं।

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परीषहाः।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारति-
स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभ-
रोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञाना-
दर्शनानि ॥९॥

सूक्ष्मसंपरायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश।१

एकादश जिने ॥११॥

बादरसंपराये सर्वे ॥१२॥

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोश-
याचनासत्कारपुरस्काराः ॥१५॥

८--मार्ग से च्युत न होने और कर्मों के क्षयार्थ जो सहन करने योग्य हों वे परीषह हैं।

९--क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नत्व, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ये कुल बाईस परीषह हैं।

१०--सूक्ष्मसम्पराय और छद्मस्थवीतराग में--चौदह परीषह संभव हैं।

११--जिन भगवान में ग्यारह सम्भव हैं।

१२--बादरसम्पराय में सभी अर्थात् बाईस ही सम्भव हैं।

१३--ज्ञानावरण के निमित्त से प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होते हैं।

१४--दर्शनमोह और अन्तराय कर्म से क्रमशः अदर्शन और अलाभ परीषह होते हैं।

१५--चारित्रमोह से नग्नत्व अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, और सत्कार पुरस्कार परीषह होते हैं।

वेदनीये शेषाः ॥१६॥

एकादयो भाज्या युगपदैकोनविंशतेः १७॥

सामायिकच्छेदोपस्थाप्यपरिहारविशुद्धिसूक्ष्म-
संपराययथाख्यातानि चारित्रम् ॥१८॥

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरि-
त्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं
तपः ॥१९॥

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्ग-
ध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥

नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदं यथाक्रमं प्राग्ध्या-
नात् ॥२१॥

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गत-
पश्छेदपरिहारोपस्थापनानि ॥२२॥

१६—शेष सभी वेदनीय

१७—एक साथ एक आत्मा में एक से लेकर १९ तक परीषह विकल्प से संभव हैं।

१८—सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात यह पाँच प्रकार का चारित्र है।

१९—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और कायकलेश यह बाह्य तप हैं।

२०—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान यह आभ्यन्तर तप है।

२१—ध्यान से पहले के आभ्यन्तर तपों के अनुक्रम से नव, चार, दस, पाँच और दो भेद हैं।

२२—आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापन यह नव प्रकार का प्रायश्चित है।

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः २३॥

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षकग्लानगणकुल-
सङ्घसाधुसमनोज्ञानाम् ॥२४॥

वाचनाप्रच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।२५।

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्या-
नम् ॥२७॥

आ मुहूर्तात् ॥२८॥

आर्तरौद्रधर्मशुक्लानि ॥२९॥

परे मोक्षहेतू ॥३०॥

आर्तममनोज्ञानां सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय-
स्मृतिसमन्वाहारः ॥३१॥

२३—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार ये विनय के चार भेद हैं।

२४—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और समनोज्ञ इस तरह दस प्रकार का वैयावृत्य है।

२५—वाचना, प्रच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश ये पाँच स्वाध्याय के भेद हैं।

२६—बाह्य और आभ्यन्तर उपाधि का त्याग ऐसा दो तरह का व्युत्सर्ग है।

२७—उत्तम संहनन वाले का जो एक विषय में अन्तःकरण की वृत्ति का स्थापन वह ध्यान है।

२८—वह अन्तर्मुहूर्त पर्यंत रहता है।

२९—आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल यह चार प्रकार के ध्यान हैं।

३०—उनमें से पर-बाद के दो मोक्ष के कारण हैं।

३१—अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए जो चिन्ता का सातत्य वह प्रथम आर्तध्यान है।

वेदनायाश्च ॥३२॥

विपरीतं मनोज्ञानाम् ॥३३॥

निदानं च ॥३४॥

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥३५॥

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ॥३६॥

आज्ञाऽपायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म-मप्रमत्तसंयतस्य ॥३७॥

उपशान्तक्षीणकषाययोश्च ॥३८॥

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३९॥

परे केवलिनः ॥४० ॥

३२—दुख के आ पड़न पर उसके दूर करने की जो सतत चिन्ता वह दूसरा आर्त ध्यान है।

३३—प्रिय वस्तु के वियोग हो जाने पर उसकी प्राप्ति के लिए जो सतत चिन्ता वह तीसरा आर्तध्यान है।

३४—प्राप्त न हुई वस्तु की प्राप्ति के लिए संकल्प करना या सतत चिन्ता करनी वह चौथा आर्तध्यान है।

३५—वह आर्तध्यान, अविरत, देशसंयत और प्रमत्तसंयत इन गुणस्थानों में ही संभव है।

३६—हिंसा, असत्य, चोरी और विषयरक्षण के लिए जो सतत चिन्ता–वही रौद्रध्यान है, वह अविरत और देशविरत में संभव है।

३७—आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान इनकी विचारणा के निमित्त जो एकाग्र मनोवृत्ति का करना वह धर्मध्यान है, यह अप्रमत्त संयत के हो सकता है।

३८—पुनः वह धर्मध्यान उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थानों में भी संभव है।

३९—उपशान्तमोह और क्षीणमोह में पहले के दो शुक्ल ध्यान संभव हैं। पहले दोनों शुक्लध्यान पूर्वधर के होते हैं।

४०—बाद के दो केवली के होते हैं।

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवृत्तीनि ॥४१॥

तत्र्यैककाययोगायोगानाम् ॥४२॥

एकाश्रये सवितर्के पूर्वे ॥४३॥

अविचारं द्वितीयम् ॥४४॥

वितर्कः श्रुतम् ॥४५॥

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥४६॥

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसङ्ख्येयगुणनिर्जराः॥४७॥

४१--पृथक्त्ववितर्क एकत्ववितर्क, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती और व्युपरत क्रिया निवृत्ति ये चार शुक्ल ध्यान हैं।

४२—वह शुक्लध्यान अनुक्रम से तीन योग वाला, किसी एक योग वाला, काययोग वाला और योगरहित होता है।

४३—पहले के दो, एक आश्रय वाले एवं सवितर्क होते हैं।

४४—इनमें से दूसरा अविचार है अर्थात् पहला सविचार है।

४५--वितर्क अर्थात् श्रुत।

४६--विचार अर्थात् अर्थ, व्यंजन और योग की संक्राति।

४७--सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धि वियोजक, दर्शन मोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये दस अनुक्रम से असंख्येय गुण निर्जरा वाले होते हैं।

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका
निर्ग्रन्थाः ॥४८

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपात-
स्थानावकल्पतः साध्याः ॥४९॥

४८—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थ हैं।

४९—संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपात और स्थान के भेद से इन निर्ग्रन्थों का विचार करना चाहिये।

दशमोऽध्यायः

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥१॥

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्याम् ॥२॥

कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः ॥३॥

औपशमिकादिभव्यत्वाभावाच्चान्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥४॥

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या लोकान्तात् ॥५॥

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्चतद्गतिः ॥६॥

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥७॥

दसवाँ अध्याय

१—मोह के क्षय से और ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय के क्षय से केवल ज्ञान प्रकट होता है।

२—बन्धहेतुओं के अभाव और निर्जरा से कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होता है।

३—संपूर्ण कर्मों का क्षय होना ही मोक्ष है।

४—क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन और सिद्धत्व के सिवाय औपशमिक आदि भावों तथा भव्यत्व के अभाव से मोक्ष प्रकट होता है।

५—संपूर्ण कर्मों के क्षय होने के बाद तुरन्त ही मुक्तजीव लोक के अन्त तक ऊँचे जाता है।

६—पूर्व प्रयोग से, संग के अभाव से, बन्धन टूटने से और वैसी गति के परिणाम से मुक्तजीव ऊँचे जाता है।

७—क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र,प्रत्येकबुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या, अल्प-बहुत्व इन बारह बातों द्वारा सिद्ध जीवों का विचार करना चाहिए।